Ref.

आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी-समीक्षा को ऐतिहासिक एवं परंपरावादी दृष्टि से संपूरित-संवर्धित करनेवाले समीक्षकों में महत्वपूर्ण नाम आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी है। उनके व्यक्तित्व का आचार्य-रूप एवं सर्जक-रूप समान्वित रूप से एक नूतन समीक्षा-पद्धति को प्रस्तुत करता है। आ० द्विवेदी सबसे बढ़कर मानवतावादी हैं, वे साहित्य के उद्देश्य-रूप में मानवता को प्रतिष्ठित करते हैं। उनकी समीक्षा-पद्धति के दर्शन हमें उनके ऐतिहासिक एवं शोधपरक ग्रंथों में प्राप्त होते हैं, न कि किसी समीक्षा-ग्रंथ के द्वारा। जिन ग्रंथों द्वारा द्विवेदीजी की समीक्षा-दृष्टि का परिचय मिलता है, उनमें 'सूर-साहित्य', 'कबीर', 'नाथ-संप्रदाय', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'आधुनिक हिन्दी साहित्य पर विचार', 'साहित्य का मर्म', 'साहित्य सहचर' 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' आदि मुख्य हैं।

एक पूर्वाग्रहरहित स्वतंत्र-चिन्तन से युक्त ऐतिहासिक, वैज्ञानिक एवं मानवतावादी दृष्टि अपनाते हुए द्विवेदी जी ने ऐसी स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिसने आ० शुक्ल की कई मान्यताओं को ध्वस्त किया। आ० शुक्ल के सबसे प्रिय कवि जहाँ तुलसीदास थे, द्विवेदीजी ने कबीर के संबंध में कहा – "हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।" शुक्लजी ने कबीर को अनपढ़, कवित्वहीन, अटपटी खिचड़ी-पचमेल वाणी के कवि, लोक-विरोधी आदि कहकर उनका तिरस्कार किया था। किन्तु द्विवेदीजी ने कहा – 'उनकी उक्तियों में कवित्व की ऊँची-से-ऊँची चीज प्राप्य है।' ... 'उन्होंने "भाषा" के 'बहते नीर' में सरस्वती को स्नान कराया।' ... आजतक हिन्दी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य-लेखक पैदा ही नहीं हुआ।' ... वे वाणी के डिक्टेटर थे। ... वे अक्खड़ आदत से ही थे, स्वभाव से तो वे फक्कड़ ही थे।' अपनी ऐतिहासिक एवं परंपरावादी दृष्टि के ही कारण वे कबीर की विद्रोही भावना को नाथ-पंथियों की परंपरा से जोड़ते हैं।

महाकवि सूरदास की प्रेम-भक्ति एवं परकीया प्रेम की स्वीकृति को द्विवेदीजी इसी प्रकार परंपरा एवं इतिहास-दृष्टि

से विवेचित करते हैं। कृष्ण-भक्ति के प्रेम-तत्व के विकास में वे तंत्र-मार्ग का योगदान सिद्ध करते हैं — "ब्रजभाषा काव्य की युगल मूर्त्ति का परिचय अपूर्ण ही रह जायेगा यदि हम तंत्रवाद और सहजवाद का रहस्य न समझ लें।" जायसी एवं अन्य सूफी कवियों के प्रेमतत्व को जहाँ शुक्लजी ने 'अभारतीय' कहा था, क्योंकि वह 'ऐकान्तिक और 'लोक वाह्य' है; द्विवेदी जी ने उस प्रेमतत्व को भी परंपरा से जोड़कर दिखलाया और 'लोकोन्मुख' कहा। उनका कथन है - "इस ऐकान्तिक प्रेम में लोकमर्यादा का अतिक्रम दोष नहीं गुण समझा जाता है।"

द्विवेदीजी की ऐतिहासिक स्थापना का एक प्रमुख पक्ष भक्तिकाव्य के उद्यान को लेकर है। ग्रियर्सन ने भक्ति को 'अचानक बिजली की कौंध के समान फैल जाने' तथा ईसाइयत के प्रभाव से युक्त माना था। उत्तर में द्विवेदीजी ने उसे भारतीय परंपरा के निरंतर विकास से जोड़ते हुए कहा - "सैकड़ो वर्षों से मेघखण्ड एकत्र हो रहे थे।" ईसाइयत के 'पाप-बोध' को उन्होंने आन्तर और स्वाभाविक कहा, जबकि भक्त कवियों में यह वाह्य या ~~आगन्तुक~~ आगंतुक वस्तु है। उन्होंने इसे ~~[illegible]~~ इस्लामी शासकों के अत्याचार के फलस्वरूप हतदर्प पराजित जाति का काव्य भी नहीं माना। उन्होंने लिखा - "अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।" इस संदर्भ में उन्होंने दक्षिण के आलवार भक्तों और आभीरों की कृष्ण-भक्ति की चर्चा की।

आ० द्विवेदी आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन में भी इसी लोकधर्मी परंपरावादी दृष्टि के पोषक हैं। मानवधर्म के प्रबल समर्थक प्रेमचंद को भी वे कबीर के समान विद्रोही लेखक सिद्ध ~~किया~~ करते हैं। उनकी दृष्टि में - "धार्मिक ढकोसलों को वे ढोंग समझते थे, पर मनुष्य को वे सबसे बड़ी वस्तु समझते थे। उन्होंने ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया फिर भी इस युग के साहित्यकारों में मानव की सद्वृत्तियों में जैसा अडिग विश्वास प्रेमचंद का था वैसा शायद ही किसी और का हो।" इसी तरह, कालिदास के लालित्य के प्रशंसक द्विवेदी आधुनिक प्रगतिवाद एवं प्रगतिशील आन्दोलन की संभावनाओं से युक्त मानते हैं। किन्तु उनकी चिन्ता यह है कि "इस आन्दोलन में भी एक प्रकार की साम्प्रदायिकता के उगने के चिह्न दीखने लगे हैं।"

जहाँ तक साहित्य-समीक्षा के सिद्धान्त का संदर्भ है, द्विवेदीजी की रुचि उस ओर कम दिखती है। 'साहित्य-सहचर'

पुस्तक में अवश्य साहित्य-सिद्धांतों की चर्चा है, किन्तु वहाँ द्विवेदी जी स्वयं विश्लेषण से बचते दिखे हैं। वे प्रायः साहित्य के 'रस' और 'रसास्वादन' की जगह 'साहित्य का मर्म' की बात करते हैं। वे साहित्य ही नहीं, चित्रकला, मूर्तिकला, धर्म आदि समस्त माध्यमों के लिए मनुष्य की 'समस्त रचयित्री आनन्दिनी वृत्ति' का विकास आवश्यक समझते हैं। इसी सौन्दर्य-वृत्ति या लालित्य-योजना को जीवन के समग्र विकास रूप में पाते हैं। अपनी अधूरी पुस्तक 'लालित्य मीमांसा' में वे अपनी मौलिक सौन्दर्य-चिन्तन अभिव्यक्त करते हैं। वे सौन्दर्य को 'बंधन के विरुद्ध विद्रोह' तथा 'मनुष्य की सिसृक्षा का परिणाम' मानते हैं।

स्पष्टतः द्विवेदी जी एक स्वतंत्रचेता विश्लेषणपरक समीक्षक की श्रेणी में आते हैं। उन्होंने अपनी दृष्टि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पंक्ति 'साबार ऊपर मानुष सत्य' पर टिकाए रखी इसलिए जहाँ भी उन्हें सामान्य मनुष्य की पीड़ा और उसका विद्रोह दिखा है, वह साहित्य उनके लिए श्रेष्य है। अपनी सन्तुलित दृष्टि से उन्होंने हिन्दी साहित्य-समीक्षा में लोकोन्मुख प्रगतिशील परम्परा का संधान किया है।

आ० ह० प्र० द्विवेदी → 19 अगस्त 1907 – 19 मई 1979

जन्मस्थान = दूबे का छपरा, बलिया, उ० प्रदेश।

शांतिनिकेतन एवं काशी हिन्दू वि० वि० में हिन्दी विभाग में अध्यापन/अध्यक्ष

'कबीर' पुस्तक पर मंगला प्रसाद पारितोषिक।

पद्मभूषण उपाधि – 1957 ई० में

'आलोक-पर्व' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार – 1973 ई० में

नामवर सिंह

Ref.

प्रगतिवादी हिन्दी आलोचना को अपनी प्रखर मौलिक दृष्टि से संयुक्त कर उसे समकालीन हिन्दी समीक्षा के लिए अधिक उपयुक्त बनानेवाले मनीषी का नाम नामवर सिंह है। नामवरजी ने अपने अध्ययन का विषय प्राचीन और अर्वाचीन — दोनों साहित्य को बनाया है। यद्यपि उनकी समीक्ष्य-दृष्टि का आधार मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र ही है, तथापि उन्होंने किसी पूर्व-निर्धारित आलोचनात्मक मान को आलोच्य विषय पर चस्पां नहीं किया है। वे मानते हैं कि आलोच्य अपना मान स्वयं है। उन्होंने संरचना को महत्व देने के साथ ही मूल्यों का भी ध्यान रखा है। चूँकि नामवरजी मानते हैं कि 'हर अतीत कभी-न-कभी वर्तमान रहता है, इसलिए वे अपनी समीक्षा-प्रक्रिया में आलोच्य से संबंधित सभी पक्षों का मूल्यांकन करते हैं। साहित्य-रचना के परिवेश को लेकर डॉ नामवर सिंह की स्पष्ट धारणा है कि "परिवेश महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण मानवीय संवेदना है।" इसी आधार पर विदेशी परिवेश में रचित निर्मल वर्मा की कहानियों को वे भारतीय ही घोषित करते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में 'मूल वस्तु है — ह्यूमन कंसर्न (मानवीय संवेदना)।

डॉ नामवर सिंह की समीक्षा-दृष्टि का परिचय सर्वप्रथम 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' से मिलता है। अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हुए उन्होंने बीच-बीच में जो व्याख्या या टिप्पणियाँ प्रस्तुत की हैं, वे विचारपूर्ण तथा सुचिन्तित हैं। वे सूक्ष्मदर्शिता और सहृदयता के साथ मार्क्सवादी आलोचना-पद्धति का रूप प्रस्तुत करती हैं। इससे तत्कालीन समाज का अत्यंत आत्मीय रूप उपस्थित होता है। मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक पद्धति से युक्त ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण को नामवरजी 'इतिहास का नया दृष्टिकोण' में साहित्येतिहास के पुनर्लेखन का आधार मानते हैं। वे अपने इसी दृष्टिकोण के आधार पर साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या पर जोर देते हैं। वे मानते हैं कि साहित्य समाज की उपज अवश्य है, किन्तु साहित्य स्वयं एक प्रभावशाली शक्ति है। साहित्य को अनुकृति कम, और रचनात्मक कृति अधिक मानते हुए नामवरजी लिखते हैं कि

"जितनी बड़ी साहित्यिक कृति होती है, उसमें वास्तविकता की रचनात्मक शक्ति भी उतनी अधिक होती है तथा अनुकृति उतनी ही कम।"

नामवर जी ने जिन अन्य पुस्तकों में अपनी व्यावहारिक समीक्षा को स्पष्ट किया है, उनमें — 'छायावाद', 'इतिहास और आलोचना', 'कविता के नये प्रतिमान', 'कहानी : नयी कहानी', 'दूसरी परम्परा की खोज', 'वाद-विवाद-संवाद', 'आलोचना और संवाद' प्रमुख हैं। छायावाद की उन्होंने ऐतिहासिक-सामाजिक व्याख्या की है। यहाँ डॉ० सिंह निगमनात्मक पद्धति से छायावाद का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं। वे एक ही कालखण्ड में रचित कविताओं के पारस्परिक अंतस्संबंधी सूत्रों को ढूँढ़कर उसका विवेचन करते हैं। निराला कृत 'तुलसीदास' के संबंध में वे लिखते हैं - "हिन्दी जाति के सबसे बड़े जातीय कवि की जीवनकथा के द्वारा निराला ने अपनी सामयिक परिस्थितियों में से रास्ता निकालने का संकेत दिया है।" 'इतिहास और आलोचना' के निबंध स्पष्ट करते हैं कि एक उत्कृष्ट रचना में व्यापकता और गहराई साथ-साथ होती है; वे परस्पर-विरोधी न होकर अन्योन्याश्रित हैं। नयी कविता के विवेचन-क्रम में उन्होंने कहा कि अनुभूति एक रचनात्मक क्रिया है। अपने जीवन और परिस्थितियों को बदलने के क्रम में हमारी अनुभूतियाँ भी बदलती चलती हैं - उनमें नवीनता आती है। वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के कारण मनुष्य के रागबोध के अनेक नये पहलू प्रकट हुए। 'कविता के नये प्रतिमान' में नामवरजी ने नयी कविता के संबंध में कहा कि कविता बिम्ब-विधान के दायरे से निकलकर सपाटबयानी की तरफ बढ़ी है। वे रघुवीर सहाय की कविता को आधार बनाकर उसकी वकालत भी करते हैं। प्रयोगवादी कविताओं को वे ह्रासोन्मुखी मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र कहते हैं। उनके अनुसार, इनमें मध्यवर्गीय हीनता, दीनता, अनास्था, कटुता, अंतर्मुखता, पलायन आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। वहीं, 'दूसरा सप्तक' पर बेबाक टिप्पणी करते वे कहते हैं - "दूसरा सप्तक में 'व्यक्ति-सत्य' को 'वस्तु-सत्य' की दिशा में विस्तृत करने की अपेक्षा रागात्मकता के द्वारा

'तथ्य' को 'सत्य' बनाने पर बल है।" अपने समधर्मी कवि मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' को वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना सिद्ध करते हुए कहते हैं - "इसमें परम अभिव्यक्ति की की खोज के धरातल पर अस्मिता की खोज है।" समकालीन कहानियों के संबंध में नामवरजी का स्पष्ट विचार है कि "कहानी के 'फॉर्म' में कोई नया प्रयोग किये बिना भी कोई लेखक अपने गहरे यथार्थबोध के आधार पर आज सार्थक कहानी रच सकता है, बल्कि रच रहा है।"

डॉ. नामवर सिंह एक प्रगतिशील धर्मा समीक्षक होने के नाते समसामयिक रचना का महत्त्व मानकर आलोचना में प्रवृत्त रहनेवाले हैं। वे ऐसे समीक्षक हैं जो समसामयिक साहित्य का गंभीर अध्ययन कर समीक्षा-कार्य करते हैं। अस्तु, वाद के प्रति आग्रही होते हुए भी नामवरजी का समीक्षा-कार्य एक निर्मल और स्वस्थ दृष्टि का परिचायक है; इसलिए वे समसामयिक रचना जगत के लिए संदर्भवान समीक्षक हैं।

डॉ. नामवर सिंह — 28 जुलाई 1926 — 19 फरवरी 2019
जन्मस्थान — जीयनपुर (चंदौली जिला, बनारस) उ.प्र.
काशी हिन्दू वि.वि. बनारस, सागर वि.वि. एवं जोधपुर विश्वविद्यालय के बाद जवाहरलाल नेहरू वि.वि., दिल्ली में अध्यापन।

Ref.

डॉ० नगेन्द्र

सामयिक हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में डॉ० नगेन्द्र अपनी समन्वयपरक दृष्टि के कारण सर्वाधिक चर्चित रहे हैं। डॉ० नगेन्द्र ने हिन्दी समीक्षा को व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों दृष्टियों से संवर्धित किया है। इन्होंने अभिव्यक्ति और निर्मिति, आनन्द और कल्याण जैसे परस्पर-विरोधी साहित्य-सिद्धांतों को अभिन्न दिखलाने की चेष्टा की है। एक ओर प्राचीन संस्कृत काव्य-शास्त्र तथा दूसरी ओर प्राचीन यूनानी व रोमीय शास्त्रीय परंपराओं के गहन अध्ययन ने डॉ० नगेन्द्र की समीक्षा-दृष्टि को एक व्यापक भूमि प्रदान की है। उनकी समीक्षा-कृतियों में 'सुमित्रानंदन पंत', 'साकेत: एक अध्ययन', 'आधुनिक हिन्दी नाटक', 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विवेचन', 'रीतिकाव्य की भूमिका', 'देव और उनकी कविता', 'आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', 'विचार और विश्लेषण', 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ', 'नयी समीक्षा : नये संदर्भ' आदि अनेक साहित्य-शास्त्रीय ग्रंथों का अनुवाद एवं सम्पादन किया है।

डॉ० नगेन्द्र मूलतः रसवादी आलोचक रहे हैं और इनकी आलोचना आत्मानुभूति को ही प्रमाण-रूप में स्वीकार करती है। इसका कारण उन पर फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का प्रभाव स्वीकार किया गया है। किन्तु मेरी दृष्टि में साहित्य को व्यक्ति-चेतना का परिणाम माननेवाले नगेन्द्रजी की दृष्टि के पीछे छायावाद के प्रति उनका विशेष मोह है। प्रीति और विस्मय से समन्वित छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी साधना, सौन्दर्य-चेतना और कलात्मक छवियों के प्रति वे विशेष आकृष्ट थे। "कलाकार का लक्ष्य सौन्दर्य की सृष्टि ही रहता है, अपने भावों और विचारों का प्रसार नहीं। ..... लेखक के रूप में उसका दायित्व केवल एक है – निश्छल आत्माभिव्यक्ति। ..... साहित्य की सृजन-क्रिया स्वयं साहित्यकार को आनंद देती है और उसके व्यक्त रूप का ग्रहण पाठक या श्रोता को आनंद देता है। ..... हमारे व्यक्तित्व में होनेवाले संघर्ष मूलतया काममय हैं और चूँकि ललित साहित्य तो मूलतः रसात्मक होता है, अतः उसकी प्रेरणा में कामवृत्ति की प्रमुखता असंदिग्ध है।" – जैसे वक्तव्यों से वे फ्रायडीय समालोचक सिद्ध होते हैं। किन्तु उनकी समीक्षा-पद्धतियों के गहन अध्ययन बतलाते हैं कि उनकी यह दृष्टि स्वयं साध्य न होकर रसवाद के साधन हैं।

रस-ख्याति और आनंद द्रवित रस-बोध के प्रति अत्यधिक आग्रहवादी डॉ. नगेन्द्र शुक्लजी की रसवादी धारणा से प्रभावित होकर भी उनसे कुछ बातों में असहमत हैं। अपने 'रस-सिद्धान्त' में उन्होंने रस को आनन्द का और कल्याण का पर्याय मानते हुए व्यष्टि और समष्टि के आनन्द में कोई अंतर नहीं देखा है। वे शुक्लजी की सगुण रस-धारणा एवं उनकी अति-नैतिकता को अस्वीकार करते हैं। यद्यपि नगेन्द्र की समीक्षा-दृष्टि नैतिकता की अवहेलना नहीं करती, तथापि वे नीति-संहिता से अधिक मानवता को महत्व देते हैं। उनका मत है कि जीवन-मूल्यों की सार्थकता नैतिक होने में नहीं, मानवीय होने में है। डॉ. नगेन्द्र का रसवाद भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त की रस-व्याख्या से अधिक प्रभावित है; इस रसवाद की विलक्षणता है कि उसे आधुनिक युग-बोध एवं परिवेश के संदर्भ में देखने का नगेन्द्र का आग्रह है। शायद इसीलिए वे छायावादी-काव्य में विशेष रमे हैं। पंत जी को वे कल्पनाप्रधान कवि मानते हुए कहते हैं कि 'उन्होंने जीवन-नाटक को दर्शक की भाँति ही अधिक देखा है।' 'कामायनी' को वे "आधुनिक हिन्दी-काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गौरव-ग्रंथ" मानते हैं। उन्हें काव्य में प्रगति-चेतना तो पसंद है, किन्तु वही वर्ग-चेतना जो वर्ग-भेद से ऊपर होती है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों को ही वे छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया-स्वरूप देखते हैं। स्पष्टतः डॉ. नगेन्द्र के काव्यबोध की सीमा छायावादी काव्य-चेतना है। इसीलिए उनकी रुचि प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता एवं गद्य की अनेक आधुनिक विधाओं में पूरी तरह नहीं रमी है। साथ ही, अपने आलोचनात्मक विश्लेषणों में उन्होंने समाजशास्त्रीय चैतन्य का मनोविश्लेषणशास्त्र के अनुपात में समावेश नहीं किया है।

इस प्रकार नगेन्द्र शुक्लोत्तर हिन्दी-समीक्षा के गौरव-शिखर हैं। इन्होंने शास्त्रीय, सौष्ठववादी, मनोवैज्ञानिक, समाज-शास्त्रीय, ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक और शोधपरक — विभिन्न समीक्षा-प्रवृत्तियों को अपने समन्वय-योग से परिपुष्ट किया है। इनकी समीक्षा-दृष्टि का अत्यंत प्रखर प्रातिभ रूप 'रस-सिद्धान्त' में दृष्टिगत होता है, जो मानव-संवेदनाओं और रागात्मक वृत्तियों

पर निर्भर एक विकासशील सिद्धान्त है एवं जिसके आधार पर प्रत्येक युग और प्रत्येक देश के साहित्य का मार्मिक मूल्यांकन किया जा सकता है। किन्तु इधर वे व्यावहारिक से धीरे-धीरे सैद्धांतिक आलोचना की ओर बढ़ते गये हैं, जो शास्त्रबद्ध और एकेडेमिक होती जा रही है। 'भारतीय काव्य-शास्त्र' एवं 'भारतीय सौन्दर्यशास्त्र' की भूमिकाओं एवं 'शैली-विज्ञान' जैसी पुस्तकों से यह प्रमाणित है कि उनका विवेचन-विश्लेषण सूक्ष्मतर होता गया है। निश्चय ही, डॉ० नगेन्द्र की ~~समीक्ष~~ समालोचनाएँ तार्किकता के साथ ही अनुभूतिपरक सरसता का बोध कराती है।

डॉ० नगेन्द्र — 9 मार्च 1915 — 27 अक्तूबर 1999.
- अतरौली (अलीगढ़) में जन्म।
- दिल्ली वि० वि० में हिंदी विभाग में अध्यक्ष।
- प्रारंभ में दस वर्ष तक अंग्रेजी के प्राध्यापक
- आकाशवाणी में भी कार्यरत।

Ref.

Page No:
Date: / /

'राग दरबारी' उपन्यास की कथ्य-योजना/कथ्य-बोध/सारांश

हिन्दी उपन्यास साहित्य की व्यंग्यात्मक शैली का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास श्रीलाल शुक्ल रचित 'राग दरबारी' है। 1968 ई० में रचित यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारत के गाँवों का घोर यथार्थवादी, अनांचलिक और आद्यन्त व्यंग्यात्मक चित्रण करता है। यहाँ उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र के शहर से सटे गाँव 'शिवपालगंज' का चित्रण हमारे संपूर्ण राष्ट्रीय जीवन की व्यंजना करता है।

इस उपन्यास की संरचना कथात्मक विकास द्वारा नहीं, बल्कि अनेक घटना-प्रसंगों तथा उनमें अन्तर्निहित कथाओं के माध्यम से निर्मित है। शहरी शिक्षित नवयुवक - रंगनाथ के शिवपालगंज आगमन से लेकर उसके वापस शहर जाने की पाँच माह की अवधि को यहाँ चित्रित किया गया है। इसकी कथा-योजना में गाँव के ह्रासोन्मुखी जीवन की अनेक और बहुरंगी कथाएँ हैं, किन्तु इनमें मुख्य हैं - ① छंगामल विद्यालय इण्टर कॉलेज की कथा ② कोआपरेटिव यूनियन की कथा ③ रामाधीन भीमखेड़वी और उसके भाई की कथा ④ सनीचर और गाँव-सभा चुनाव की कथा ⑤ लंगड़ की कथा ⑥ जोगनाथ और थाना के दारोगा की कथा ⑦ कुसहर प्रसाद और छोटे पहलवान की कथा ⑧ गयादीन और बेटी बेला की कथा ⑨ सैनेटरी इंसपेक्टर की कथा ⑩ बद्री पहलवान, रुप्पन बाबू और रंगनाथ की कथा।

छंगामल विद्यालय इण्टर कॉलेज में पढ़ाई के सिवा सब कुछ - गन्दी राजनीति, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और गुटबंदी खुलकर होती है। कॉलेज पर हावी प्रबंध-समिति के मैनेजर बैद्यजी हैं। प्रिंसिपल, उसका रिश्तेदार क्लर्क तथा मास्टर मोतीराम मिलकर विरोधी गुट के खन्ना और मालवीय मास्टर को परेशान करते हैं। मोतीराम विज्ञान की कक्षा छोड़कर अपनी आटा चक्की चलाने चले जाते हैं तो मालवीय से प्रिंसिपल कहते हैं - "जौनु हुकुम है, तौनु चुपे कैसी आउट करो।" प्रिंसिपल भी क्लर्क के साथ

भांग, चरस, कच्ची शराब सब उपलब्ध होता है।

लंगड़ की कथा इस उपन्यास में व्याप्त है। वह भगत है। वह विधुर है और बेटों से नाराज 'मौजी आदमी' है। वह दीवानी का मुकदमा लड़ रहा है, जिसके लिए उसे पुराने फैसले की नकल लेनी है। दुबारा अर्जी देने के बाद नकलनवीस को मनचाहा घूस न देने की जिद में वह संघर्ष करता है। अंततः उसे भ्रष्ट व्यवस्था के कारण नकल नहीं मिलती।

दारू पीनेवाले रुग्ण और चोर जोगनाथ भी बैद्यजी का ही आदमी है। गयादीन के घर हुई चोरी के सिलसिले में रामाधीन की शह पर उसे थाना के दारोगा गिरफ्तार कर जेल भेज देते हैं। किंतु छोटे पहलवान की गवाही से वह छूट जाता है और दारोगा पर आठ हजार रुपये के हर्जाना का दावा ठोकता है। बैद्यजी और नये दारोगा की मिलीभगत से उस पर जाँच चलने लगती है। फिर बैद्यजी को एक हजार रुपये का चढ़ावा के साथ उसकी सुलह होती है।

कॉलेज प्रबंध समिति के सदस्य और बैद्यजी के गुंडे छोटे पहलवान और अपने पिता कुसहर प्रसाद के बीच चरित्र-लांछन और गाली-गलौज चलता रहता है। अपने पुत्र पर कुसहर जब न्याय पंचायत में मारपीट का मुकदमा करता है, तो पिता पर दूसरों का लांछन वह सह नहीं पाता और कहता है – 'हमारे बाप हरामी हैं तो तुम्हारे बाप क्या हैं।'

इसी तरह गयादीन की युवा पुत्री बेला का बद्री पहलवान बब्बू के प्रति प्रेम, उनसे मिलने छत के रास्ते मिलने जाना, रुप्पन बाबू का उसके प्रति आकर्षण, बद्री और बेला के विवाह को गयादीन द्वारा अस्वीकार करना बेला की कथा के प्रसंग हैं। साथ ही, कार्तिक मेला की कथा के प्रसंगों में सैनेटरी इंसपेक्टर सिंह साहब का मिठाईवालों से पैसे वसूलना, रुप्पन बाबू का मंदिर में झुकी लड़की को 'असली मेला' मानना, जोगनाथ और सनीचर का 'नौजवान लड़कियों को धक्का' देना एवं 'उनकी छातियों के आकार-प्रकार का हाल-चाल लेना', रंगनाथ को रंडी के दलाल का घेरना आदि हैं।

बद्री पहलवान बैद्य जी के बड़े बेटे, सबसे बड़े पहलवान और कोआपरेटिव यूनियन के एक डाइरेक्टर हैं, फिर मैनेजिंग डाइरेक्टर भी

Ref.

Page No:
Date: 1-1

व्यंग्य-उपन्यास के रूप में 'राग दरबारी' का मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-साहित्य के इतिहास में श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' एक विशिष्ट शैली की रचना है। व्यंग्य-उपन्यासों को नवीन स्वरूप एवं शिल्प से प्रस्तुत करने का यह महत्त्वपूर्ण प्रयास था। यहाँ ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को जिस सहजता से विनोदपूर्ण शैली में, बिना आक्रोश के किया गया चित्रण इसे महत्त्वपूर्ण बनाता है। यहाँ व्यंग्य इसलिए भी प्रभावी है कि विसंगति-बोध के साथ मानव-कल्याण की एक क्षीण अन्तर्धारा भी प्रवाहित होती है।

व्यंग्य-चेतना से आद्यन्त अनुप्राणित होना ही इस उपन्यास की शक्ति है। इसके ढाँचे में कोई सुगुंफित कथानक का न होना इसे ग्रामीण जीवन ठोस वास्तविकता के अधिक निकट लाता है। यहाँ चित्रित ग्रामीण यथार्थ का विद्रूप वस्तुतः सम्पूर्ण भारतवर्ष का चित्र बन गया है। शिवपालगंज के अन्तर्विरोधों, असंगतियों, विसंगतियों आदि को उपन्यासकार इस तरह चित्रित करता है कि सम्पूर्ण भारत की कुरूपता नग्न होकर उपस्थित हो जाती है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय प्रजातंत्र का यथार्थ चित्र बनकर यहाँ शहर से सटा गाँव शिवपालगंज है।

उपन्यास के आरंभ से ही व्यंग्य की अनवरत धारा प्रवाहित है। सड़क पर खड़े ट्रक का पूरा ढाँचा इस एक वाक्य से स्पष्ट हो जाता है – 'उसे देखते ही यकीन हो जाता था कि इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।' सड़क किनारों की दुकानों की खुली मिठाईयों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी है – 'हमें एक रेजर ब्लेड बनाने का नुस्खा भले ही न मालूम हो, पर कूड़े को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों में बदल देने की तरकीब सारी दुनिया में अकेले हमी को आती है।' वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था पर शुक्ल जी का व्यंग्य है – 'वर्तमान शिक्षा-पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है।' थाना के

कामकाज पर टिप्पणी है - 'इतना काम है कि सारा काम ठप्प पड़ा है।' बैद्यजी और बद्री से डाँट खाए रुप्पन बाबू की मनोदशा पर व्यंग्य है - 'सभी मशीनें बिगड़ पड़ी हैं। सब जगह कोई-न-कोई गड़बड़ी है। सड़कों पर सिर्फ कुत्ते, बिल्लियाँ और सुअर घूमते हैं।'

उपन्यास का हर प्रसंग वर्तमान भारतीय दशा पर गहरा व्यंग्य है। रंगनाथ स्वास्थ्य-लाभ के लिए वहाँ आता है जहाँ हर व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ है। शिक्षा का केन्द्र युवावर्ग को गुटबंदी के दाँव-पेंच सिखा रहा है। ग्राम सभा का प्रधान सनीचर जैसा विदूषक और युवतियों की गोलाई नापने वाला है। 'विद्वान' ब्राह्मण राधेलाल औरतें भगाने और झूठी गवाही देने में ही कुशल है। पुलिस निरपराधों को पकड़ने में सक्षम है। लंगड़ न्याय-व्यवस्था से पराजित हो जाता है। वस्तुतः शिवपालगंज भारत के अन्य देहातों-शहरों की भाँति बीमार है, जिसकी जड़ में बैद्यजी हैं। विडम्बना यही है कि बैद्यजी अधिकाधिक शक्तिशाली होते गये हैं। इन स्थितियों के लिए उपन्यासकार ने बुद्धिजीवी वर्ग को सबसे अधिक उत्तरदायी माना है। रंगनाथ के पलायन पर उनकी टिप्पणी है - 'चुरुट के धुएँ, चमकीली जैकेट वाली किताब और गलत किन्तु अनिवार्य अंग्रेजी की धुंध वाले विश्वविद्यालयों में कहीं-कहीं जाकर जम जाओ, फिर वहीं जमे रहो।'

देश की गलित परम्पराओं और आदर्शों के प्रति श्रीलाल शुक्ल का मोह नहीं है। इन्हें वे कीचड़ कहते हैं। इसीलिए उन्हें हर विकृति और असंगति खटकती है, चाहे वह स्त्रियों का खुले में जंगल जाना हो या चुनाव जीतने की तरकीबें हों, थाना का अत्याचार हो, न्यायालय में देरी हो, घूसखोरी हो या भाई-भतीजावाद हो, सस्ती इश्कबाजी हो या अवैध शारीरिक संबंध हो, भांग पीने की विधियाँ हो या जुतियाने के तरीके — व्यंग्यकार की पैनी दृष्टि सबको बेधती है।

उपन्यास में इस व्यंग्य-बोध का सबसे बड़ा हथियार उसकी भाषा है। लेखक को पता है कि विशेषण के रूप में प्रयुक्त एक शब्द या एक गँवारू शब्द कितनी गहरी

चोट कर सकता है। 'सच्ची बात ठांस दूंगा तो कलेजे में कल्लायगी, हाँ!' जैसे अनेक वाक्य व्यंग्य की चुभन को पैना कर देते हैं। या फिर 'कोई हमने इस्टांप लगाकर दरखास्त की थी कि हमें पैदा करो। चले साले कहीं के पैदा करने वाले।'

निश्चय ही, रात्रि के समय गाया जाने वाला 'राग दरबारी' शिवपालगंज के माध्यम से भारत की विकृत जीवन स्थिति को उजागर करने में सफल है। व्यंग्य के शिल्प में रचित इस रचना ने व्यंग्य-लेखन एक नई ऊँचाई प्रदान की है तथा व्यंग्य-उपन्यास के लिए नये प्रतिमान गढ़े हैं।

Ref.

Page No:
Date: / /

'राग दरबारी' के बैद्यजी का चरित्रांकन

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल की श्रेष्ठ औपन्यासिक रचना 'राग दरबारी' स्वातंत्र्योत्तर भारत की विसंगत, संकीर्ण, स्वार्थी, विद्रूप एवं भ्रष्ट व्यवस्था पर व्यंग्यात्मक शैली में करारा प्रहार करती है। इस व्यवस्था की जड़ में अंग्रेजों द्वारा पोषित सामंती व्यवस्था से उत्पन्न मानवीय संबंधों का अभाव, घृणा और मूल्य-विघटन है। इस व्यवस्था के नायक, नियंता और सूत्रधार के रूप में उपन्यास के पात्र बैद्यजी हैं। शुक्लजी ने बैद्यजी के चरित्रांकन द्वारा शिवपालगंज में चतुर्दिक व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्था को चित्रित किया है।

ब्राह्मण कुलोत्पन्न बैद्यजी पेशे से आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं। बासठ वर्षीय बैद्यजी के घर का एक हिस्सा बैठक कहलाता है, जहाँ गाँव की सारी समस्याओं का समाधान होता है। आजादी से पहले अंग्रेज-भक्त बैद्यजी महायुद्ध के दौर में अंग्रेजी सेना में भरती के लिए बहुत सारे सिपाहियों की भर्ती करवाते हैं। वे उन दिनों जूरी, असेसर, लम्बरदार, सिपुर्ददार बनकर अंग्रेजों की सेवा करते रहे। आजादी के बाद बैद्यजी गांधीवादी बनकर देशी शासकों के अटल भक्त बन जाते हैं।

बैद्यजी शिवपालगंज के एकछत्र नेता हैं। वे राजनीति की बिसात के घुटे हुए चालबाज खिलाड़ी हैं। उपन्यासकार का कथन है, "हर बड़े राजनीतिज्ञ की तरह वे राजनीति से नफरत करते थे और राजनीतिज्ञों का मजाक उड़ाते थे।" युवा वर्ग को निकम्मा मानते हुए वे इस उम्र में भी अनेक संस्थाओं के प्रधान मजबूरीवश बनते हैं। संस्थाओं के चुनाव जितवाने के कार्य बद्री पहलवान और उनके हथियारबन्द 'पट्ठों' द्वारा संपन्न होते हैं। अपने इसी हुनर द्वारा वे अपने अंडरवियरधारी, मंगधोटक, अंगूठा छाप नौकर को पंचायत का प्रधान बनवाते हैं।

बैद्यजी अपनी चिकित्सीय योग्यता के लिए भी प्रसिद्ध हैं। उनकी बैद्यकी का दो ही नुस्खा है – गरीबों का

मुफ्त इलाज, जो कभी होता नहीं और फायदा नहीं तो दाम वापस। नवयुवकों की सेहत को लेकर वे चिंतित रहते हैं। उनकी मुख्य चिकित्सा है – सनीचर द्वारा घोंटा गया बादाम, मुनक्का, पिस्ता, इलायची युक्त भांग का पेय, जो वीर्य-वर्धक है। भांजे रंगनाथ के स्वास्थ्य के लिए भी यही दवा है।

बैद्यजी उच्च कोटि के प्रशासक हैं। कॉलेज और कोऑपरेटिव यूनियन पर उन्हीं का शासन है। वे कॉलेज के मैनेजर हैं और तमंचे के जोर पर चुनाव और सालाना बैठक करवाते हैं। रुप्पन बाबू उनकी प्रशासकीय क्षमता पर कहते हैं – "ऐसा मैनेजर पूरे मुल्क में न मिलेगा। सीधे के लिए बिल्कुल सीधे हैं और हरामी के लिए खानदानी हरामी।" कुशल प्रशासक होने के नाते सिद्धान्त, आदर्श, मानवीयता आदि को वे त्याज्य मानते हैं। सत्य और न्याय की लड़ाई लड़ रहे लंगड़ से वे कहते हैं – "जाओ भाई! तुम धर्म की लड़ाई लड़ रहे हो, उसमें मैं क्या सहायता कर सकता हूँ।" कोऑपरेटिव यूनियन में बहुए गबन को वे मामूली घटना मानकर उसकी भरपाई सरकार से कराने की चाल चलते हैं। वे गुटबंदी का भी उपयोग शासन के लिए करते हैं। संस्थाओं पर पकड़ बनाये रखने के लिए वे कहते हैं कि अपनी शक्ति द्वारा 'कुछ नई और विरोधी शक्तियाँ पैदा करो .... वे आपस में एक-दूसरे से संघर्ष करती रहें।'

बैद्यजी के चरित्र के बहुविध रंग उपन्यासकार ने चित्रित किए हैं। वे त्याग द्वारा भोग करने के पक्षधर हैं। आरोप लगने पर वे कोऑपरेटिव यूनियन से त्यागपत्र देते हैं और फिर तिकड़म से ~~मैनेजिंग~~ मैनेजिंग डाइरेक्टर बन जाते हैं। वे शिवपालगंज के प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी तरह जानते हैं, कौन किस काम आ सकता है, उन्हें पता है। बैद्यजी की चारित्रिक कमजोरियों का भी चित्रण यहाँ है। उनके युवावस्था की रंगीनियों पर रुप्पन बाबू का कथन है – "पहली अम्मा मर गयी तो सत्रह साल की उमर में दूसरी शादी की। यह तो किया कायदे से और बेकायदे से कितना किया सुनोगे वह भी ...।" वे छुआछूत, जाति-पाँति को शास्त्रसम्मत मानते हैं; किन्तु लाचारी में सामाजिक

भेदभाव के विरोधी बनते हैं। बद्री पहलवान की जिद के कारण वे अन्तर्जातीय विवाह के समर्थक बन गयादीन से बद्री और बेला के विवाह की बात करने जाते हैं।

बैद्यजी धैर्य की प्रतिमूर्ति भी दिखते हैं। कॉलेज-चुनाव और गबन की जाँच को वे 'हरि इच्छा' कहकर धैर्य का परिचय देते हैं। रिक्शा पर न बैठकर ताँगे पर बैठकर वे मानव-श्रम को आदर देते प्रतीत होते हैं। स्वयं का विरोध वे सहन नहीं कर पाते। विरोध करने पर वे रुप्पन बाबू को अपने उत्तराधिकार से वंचित कर देते हैं। किन्तु, कृपालुता का परिचय देते वे सनीचर को ग्रामप्रधान भी बना देते हैं।

निष्कर्षतः, हम पाते हैं कि 'राग दरबारी' के बैद्यजी इन्सान की पोशाक में हैवान को छिपाना खूब जानते हैं। 'वे जितना जमीन के ऊपर हैं, उतना ही नीचे धुसे हुए हैं।' नैतिकता को छोड़ सफेदपोशी राजनीति करने तथा वीर्य-वृद्धि का उपचार करनेवाले बैद्यजी शिवपालगंज के सभी पापों-अनाचारों के जनक हैं।

Ref.

'राग दरबारी' के रंगनाथ का चरित्रांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में 'राग दरबारी' का विशिष्ट स्थान है। व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल की इस व्यंग्य-रचना में भारतीय जिन्दगी की ~~चलचित्र~~ चलचित्रात्मक कथा सुगुंफित है, जहाँ प्रगति के नारों के बावजूद निहित स्वार्थी और अवांछनीय तत्वों के दबाव में सिसक रही है। इस जीवन को उपन्यासकार ने शहर के किनारे बसे 'भारतीय देहात के महासागर' – शिवपालगंज के माध्यम से चित्रित किया है। इस भ्रष्ट, गंदी, विद्रूप सामाजिक जीवन को एक तटस्थ द्रष्टा की भाँति उस राह से गुजरनेवाला केन्द्रीय चरित्र है – रंगनाथ।

शहर से शिवपालगंज आया हुआ बैद्यजी का मंझला रंगनाथ गाँव की समस्त विसंगत स्थितियों का दर्शक है। वह इतिहास विषय से एम.ए. पास युवक है, जो अब रिसर्च कर रहा है। अंग्रेजी दवाओं के सेवन से स्वस्थ न हो पाने पर वह अपने बैद्य मामा के पास आयुर्वेदिक दवा का सेवन करने आता है। उनके परामर्श से रंगनाथ की दिनचर्या तय होती है और उसका अधिकांश समय बैद्यजी की बैठक में बीतने लगता है। रंगनाथ के शिवपालगंज-प्रवास की अवधि पाँच माह की है और इतने ही में वह गाँव को सूर्णतः जान लेता है कि "वही दाँव-पेंच, वही पैंतरेबाजी की अखिल भारतीय प्रतिभा इफरात से शिवपालगंज में बिखरी है।"

उपन्यास में रंगनाथ का प्रवेश उस खद्दर-धारी वेश में होता है, जिसे ट्रक ड्राइवर के अनुसार 'कोई टुक का आदमी तो पहनता नहीं।' ट्रक ड्राइवर से उसकी बातचीत से पता चलता है कि देश की राजनीतिक अवस्था की उसे गहरी समझ है – 'तुम्हारा गियर तो बिल्कुल अपने देश की हुकूमत-जैसा है।' रंगनाथ को शिवपालगंज के बारे में यह भ्रम होता है कि यहाँ जीवन बड़े आराम से बीतता है, शहर जैसा संघर्ष यहाँ नहीं। किन्तु, चौदह वर्षीय किशोर गंजहे की चौर-कला निपुणता जानकर या स्कूली

विरोध करता है, किन्तु अपमानजनक पराजय ही हाथ आती है। उसे लगने लगता है कि इस व्यवस्था में रहने के लिए, जीने के लिए दरबारी-राग गाना आवश्यक है। जो यह राग नहीं गाएगा, उसे पलायन-संगीत गाना पड़ेगा। बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि रंगनाथ की मानसिकता है कि अगर तुम्हें यहीं रहना पड़े तो अलग से अपनी एक हवाई दुनिया बना लो। डॉ. विवेकी राय की टिप्पणी है – "भारत का हर बुद्धिजीवी आज रंगनाथ की दयनीय तस्वीर बना हत बुद्धि होकर कांग्रेसी समाजवाद की चुनौतियों के भीतर-ही-भीतर जूझ रहा है।" वस्तुतः रंगनाथ अपनी क्रियाहीनता के साथ नपुंसक आक्रोश में जी रहा है, छटपटा रहा है किन्तु सर्वग्रासी राजनीतिक दलदल में फंसकर कुंठित चेतना को लेकर वह अंततः पलायन कर ही जाता है।

रुप्पन बाबू प्रेम और रोमांस के भी नायक हैं। गाँवभर की मशहूर सुन्दर युवती बेला, जो सूदखोर वैश्य गयादीन की बिनमाँ बेटी है, से वे प्रेम करते हैं। उन्होंने बेला को कई प्रेम-पत्र लिखे थे, जिनमें कई ग़ज़ल और कविताएँ भरी रहती थीं। उनके कमरे में गुप्त साहित्य की भरमार है, जिसमें 'मानव-मानव के चिरन्तन' संबंधों का चित्रण होता है। खन्ना मास्टर की पत्नी की ओर भी उनके झुकाव का भी उपन्यासकार ने संकेत दिया है।

राजनीति और रोमांस के दबंग रुप्पन बाबू को गाँव के लोग और स्वयं बैद्यजी भी अपना उत्तराधिकारी मानते हैं। किन्तु बेला-प्रसंग में जब उन्हें बद्री और बेला के संबंधों का पता चलता है, तो उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित होता है। रंगनाथ की कॉलेज के विरोधी गुट के मास्टर खन्ना और मालवीय से सहानुभूति-भावना से वे भी प्रभावित होते हैं। दोनों मास्टरों के पक्ष में जाते हुए उन्हें कॉलेज से जबर्दस्ती इस्तीफा दिलवाने का वे विरोध करते हैं। इन मास्टरों पर जब धारा 107 का मुकदमा दायर किया जाता है, तो वे बीच बाजार में प्रिंसिपल को चुनौती देते हैं— "कल ही सुलह हो जानी चाहिए। कल के बाद अगर इसकी पेशी पड़ी तो समझ लेना, सभी इस्टूडेन्ट 'इनक्लाब जिन्दाबाद' पर उतर आयेंगे। तुम्हारी पार्टीबन्दी वहीं धरी रह जायेगी।" इस तरह वे बैद्यजी, बद्री, प्रिंसिपल सबके विरोधी बन जाते हैं। उनसे यहाँ राजनीतिक चूक होती है, नादानी में वे बैद्यजी के कोपभाजन बन जाते हैं। बैद्यजी उन्हें अपने समस्त उत्तराधिकार से वंचित कर देते हैं— "जा, तुझे मैं अपने उत्तराधिकार से वंचित करता हूँ। मेरे बाद बद्री ही इस कॉलेज के मैनेजर होंगे। यही मेरा अन्तिम निर्णय है। रुप्पन को कुछ नहीं मिलेगा।"

स्पष्टतः, 'राग दरबारी' के रुप्पन बाबू का व्यक्तित्व आज के आक्रोशित युवा वर्ग का है। बैद्यजी द्वारा किये जा रहे अन्याय को चुनौती देने में उनका साहस और दबंग रूप ही चित्रित है। उपन्यासकार के शब्दों में, "बैद्यजी की दहाड़ और गालियाँ सुनकर वहाँ से चलता है तो उसका व्यक्तित्व कुंठित या लुचलुचाया हुआ नहीं, तिलमिलाया हुआ प्रतीत होता है।

Ref.

Page No:
Date: / /

'राग दरबारी' के रुप्पन बाबू का चरित्रांकन

स्वातंत्र्योत्तर भारत के ह्रासोन्मुखी सामाजिक-राजनीतिक-नैतिक जीवन का व्यंग्यात्मक शैली में यथार्थ चित्रण करनेवाला दस्तावेजी उपन्यास है — श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी'। शहर से सटे शिवपालगंज की सड़ी-गली व्यवस्था से मरी जिन्दगी को चित्रित करनेवाले ~~ब~~ चरित्रों की इस उपन्यास में भरमार है। विघटित जीवन-मूल्यों को अपने जीवन का आधार बनानेवाले आधुनिक युवा-वर्ग का प्रतिनिधि पात्र रुप्पन बाबू है, जो सारी भ्रष्ट व्यवस्था के सूत्रधार सर्वशक्तिमान वैद्यजी के छोटे पुत्र हैं।

रुप्पन बाबू का व्यक्तित्व ~~[illegible]~~ योग्य पिता के योग्य पुत्र के रूप में प्रारंभ से ही लक्षित है। वे छंगामल कॉलेज में तीन वर्षों से दसवीं कक्षा में पढ़ रहे हैं, किन्तु ~~[illegible]~~ छात्र-नेता के रूप में वे सर्वपूज्य हैं। उनकी नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र यही कॉलेज है। उनका इशारा पाकर सैकड़ो विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़ने पर उस पर चढ़ भी सकते थे।

लम्बी गरदन, लम्बे हाथ और लम्बे पैर वाले दुबले-पतले युवक रुप्पन बाबू सफेद धोती पर रंगीन बुशशर्ट और गले में रेशमी रुमाल लपेटे रहते हैं। धोती का कोंच उनके कन्धे पर पड़ा रहता था। देखने में उनकी शक्ल एक घबराये हुए मरियल बछड़े की सी थी, किन्तु उनका रौब पिछले पैरों पर खड़े एक हिनहिनाते घोड़े का-सा पड़ता था। सम्पूर्ण उपन्यास पर इनके व्यक्तित्व की छाप दिखाई पड़ती है। शिवपालगंज की राजनीति में इनकी बड़ी कद्र है। मेला-तमाशा हो या चुनाव — सब जगह उनका हस्तक्षेप है। तहसीलदार इनका हमजोली, थानेदार दरबारी और प्रिंसिपल मातहत है। मास्टर लोग इन्हें 'भयानां भय भीषणं भीषणानां' और पिताओं का पिता मानते हैं। दुकानदार इनके हाथ सामान बेचते ~~[illegible]~~ नहीं, अर्पित करते हैं और इक्केवाले इनसे किराया नहीं, आशीर्वाद मांगते हैं। यहाँ तक कि सर्वशक्तिमान वैद्यजी भी इनका लिहाज करते हैं।

Ref.

Page No:
Date: / /

'सदाचार का ताबीज' की समीक्षा

'सदाचार का ताबीज' आधुनिक हिन्दी साहित्य के समर्थ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की चर्चित रचना है। परसाईजी ने स्वतंत्र भारत की चरम मूल्य-हीन राजनीति पर खुले प्रहार को अपने व्यंग्य-लेखन का केन्द्रबिन्दु बनाया है। इस दिशा में उनके लेखकीय साहस, प्रतिबद्धता, तटस्थता एवं दृष्टिगत सूक्ष्मता के दर्शन बड़ी स्पष्टता से होते हैं। अपने राजनीतिक व्यंग्य में गम्भीरता के साथ-साथ रोचकता, हास्य-विनोद आदि के द्वारा वे उसे चुटीला और मार्मिक बनाते हैं।

1967 ई० में प्रकाशित प्रस्तुत ~~व्यंग्य-~~ रचना स्वतंत्र भारत में गहरे पैठ चुके राजनीतिक भ्रष्टाचार पर चुटीला प्रहार करती है। यहाँ परसाईजी ने एक राजा एवं ~~दरबारी तंत्र~~ दरबारियों का प्रसंग उठाकर सदाचार और भ्रष्टाचार की बात की है। राज्य में भ्रष्टाचार की अधिक शिकायतें आने पर राजा दरबारियों से पूछता है कि भ्रष्टाचार क्या है? कैसा दिखता है? वह कहाँ मिलेगा? आदि आदि। दरबारीगण भी उसके प्रति अज्ञानी दिखते हैं। चापलूस दरबारी कहते हैं कि "जब हुजूर को नहीं दिखा तो हमें कैसे दिख सकता है?" दरबारियों की इस राय पर कि वह बारीक और सूक्ष्म है, भ्रष्टाचार की खोज में पाँच विशेषज्ञ नियुक्त किए जाते हैं। दो महीने की छानबीन के बाद विशेषज्ञ आकर कहते हैं कि भ्रष्टाचार सूक्ष्म, अगोचर और सर्वव्यापी है। उनकी टिप्पणी है कि अब भ्रष्टाचार ही ईश्वर हो गया है। राजा के सिंहासन में भी भ्रष्टाचार की बात कहने पर राजा चिन्तित होते हैं और समझ पाते हैं कि भ्रष्टाचार मुख्यतः घूस के रूप में है। विशेषज्ञ बतलाते हैं कि भ्रष्टाचार ठेका, ठेकेदार, अधिकारी आदि के कारण होता है। इसे हटाने के लिए व्यवस्था में बहुत परिवर्तन ~~करने~~ करने होंगे। किन्तु दरबारियों के सुझाव पर राजा इतनी उलट-फेर करने, व्यवस्था को उलट-पलट करने के बदले एक साधक तपस्वी की सहायता लेने पर सहमत होता है।

वह तपस्वी साधु सिद्ध किए हुए सदाचार का ताबीज राजा के समक्ष प्रस्तुत करता है। वह बतलाता है कि व्यक्ति भ्रष्टाचार अपनी आत्मा की आवाज पर करता है। यह ताबीज उस आत्मा पर हावी होकर सदाचार की आवाज के अनुसार व्यक्ति को आचरण के लिए विवश करता है। दरबारियों के कहने पर उस साधु को ताबीज बनाने का ठेका दे दिया जाता है। सभी कर्मचारियों को ताबीज पहनने को कहा जाता है। राजा इस ताबीज के परीक्षण के लिए वेश बदलकर महीने की तीसरी तारीख को घूस के पाँच रुपये देता है, किन्तु वह अस्वीकार कर देता है। पुनः महीने की इकतीस तारीख को वह घूस देता है और वह कर्मचारी घूस ले लेता है। राजा ने कान लगाकर ताबीज की आवाज सुनी तो पाया कि आवाज आ रही थी - "ले, ले, आज तेइकतीस तारीख है।"

कथाशैली में प्रस्तुत इस निबंध में लेखक ने राजा, उसकी मूर्ख-कपटी प्रजा और साधु के माध्यम से भ्रष्टाचार का खुलासा किया है। यह नाटकीय रचना दोमुँहापन और पाखंड का भंडाफोड़ करती है। यहाँ भ्रष्टाचार और राजनीति एक दूसरे का पर्याय है। परसाईजी ने व्यंग्य के समस्त साधनों का उपयोग कर भ्रष्टाचार पर कटु तीक्ष्ण प्रहार किया है।

प्रस्तुत निबंध की भाषा यद्यपि सामान्य बोलचाल की ही है, जिसमें देशज, उर्दू आदि कई भाषाओं का मुहावरों-लोकोक्तियों के साथ समावेश है; किन्तु इस भाषा में व्यंग्य की वह धार है जो रचना को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल बनाती है। जब एक दरबारी आध्यात्मिक स्वर में भ्रष्टाचार को परिभाषित करता है - "राजन, यह स्थूल नहीं सूक्ष्म है, अगोचर है पर सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखा नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।" राजा का वचन व्यंग्य को गहरा कर देता है - "यह तो ईश्वर के गुण हैं, क्या भ्रष्टाचार ईश्वर है?" वास्तव में, 'सदाचार का ताबीज' रचना आज की भ्रष्टाचारी भारतीय राजनीति पर गहरा व्यंग्य है। यह रचना हिन्दी व्यंग्य-साहित्य में अन्यतम है।

Ref.

साहित्य की महत्ता

-आ० महावीर प्र० द्विवेदी

खड़ी बोली हिन्दी और हिन्दी गद्य के परिष्कार और परिमार्जन का महान दायित्व पूर्ण करनेवाले आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास-पुरुष आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी का विचारपूर्ण निबंध है - 'साहित्य की महत्ता'। 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन-कार्य करते हुए द्विवेदीजी ने अपने युग का नेतृत्व किया और मौलिक साहित्य-सृजन के लिए साहित्यकारों का निर्देशन किया। एक लेखक और निबंधकार के रूप में द्विवेदीजी ने कई पुस्तकों की रचना की। 'रसज्ञ रंजन, साहित्य सीकर, सुकवि संकीर्तन, कालिदास की आलोचना आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

प्रस्तुत निबंध आ० द्विवेदी के चर्चित निबंधों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ लेखक ने मानव जाति के उत्थान और विकास के लिए साहित्य की अनिवार्य महत्ता प्रतिपादित की है। निबंध में सबसे पहले द्विवेदीजी ने साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि "ज्ञानराशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाला" साहित्य ही है। लेखक ने साहित्य की इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुए ही कहा कि किसी भी भाषा की शोभा, उसकी मान-मर्यादा साहित्य पर ही आश्रित होती है।

साहित्य-विहीन जाति को द्विवेदीजी 'असभ्य किंवा अपूर्ण सभ्य' भी मानते हैं; क्योंकि किसी जाति की आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक व राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब उसके साहित्य में ही मिल पाता है। साहित्य समाज का आईना है - यह बात सशक्त ढंग से लेखक ने कही है। समाज की क्षमता और सजीवता साहित्य में ही प्रभावी ढंग से चित्रित हो पाती है। लेखक ने यहाँ विकृत साहित्य एवं सत्साहित्य के बीच का अन्तर भी स्पष्ट किया है। चूँकि द्विवेदीजी मानते हैं कि साहित्य उसी तरह हमारे मस्तिष्क का पोषण करता है,

जिस तरह शरीर का पोषण पौष्टिक खाद्य-पदार्थ द्वारा होता है। इसलिए हमारे मस्तिष्क शक्तिसम्पन्न और तेजवान बन सकें, हमें हमेशा अच्छे साहित्य का सतत सेवन करना चाहिए। इसके विपरीत विकृत साहित्य का सेवन हमारे मस्तिष्क को विकारग्रस्त कर देता है, जैसे कि विकृत भोजन हमारे शरीर को रुग्ण कर देता है। द्विवेदी का इसीलिए आग्रह है कि यदि हमें अन्य देशों या समाजों की सभ्यता-संस्कृति से पिछड़ना नहीं है तो हमें अत्यंत उत्साही होकर अपने प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी है तथा निरन्तर सत्साहित्य की रचना में प्रवृत्त रहना है।

साहित्य की अपार शक्ति का विश्लेषण करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है – "जो साहित्य मुर्दों को भी जिन्दा करनेवाली संजीवनी औषधि का आकार है, जो साहित्य पतितों को उठानेवाला और उन्नतों के मस्तक को उन्नत करनेवाला है।" अपने निबंध में लेखक ने साहित्य की इस क्षमता के अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने पोप की प्रभुता को कम करने, फ्रांस में प्रजा का शासन स्थापित करने, पदाक्रांत इटली का मस्तक ऊँचा उठाने में साहित्य की ही भूमिका पायी है। लेखक ऐसे सभी मनुष्यों को समाजद्रोही, देशद्रोही, जातिद्रोही, आत्मद्रोही और आत्महन्ता भी मानते हैं जो साहित्य की सेवा नहीं करता या उसका विकास नहीं करता या उससे प्रेम नहीं करता।

प्रस्तुत निबंध में विद्वान विचारक ने स्वभाषा के साहित्य के उत्थान पर अतिरिक्त बल दिया है। विश्व इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ दिखती है जहाँ दूसरे देशों पर अधिकार करनेवाले राष्ट्र अपनी भाषा का भी प्रभुत्व गुलाम देश पर लाद देते हैं। जैसे एक समय फ्रेंच भाषा का प्रभुत्व जर्मन, रूसी, इटैलियन और अंग्रेजी भाषा के देशों और भाषाओं पर स्थापित था। ऐसी स्थिति में या तो भाषा-साहित्य का उत्पादन बंद हो जाता है या मंद तो निश्चित ही पड़ जाता है। किन्तु इन देशों ने दूसरी भाषाओं के दबाव को झेलने के बावजूद

अपनी भाषा के साहित्य को पुनर्जीवित किया और अपने देशों की श्रीवृद्धि को कायम रखा। वस्तुतः विदेशी भाषा में साहित्य-सृजन से देश का कल्याण नहीं हो सकता। लेखक ने स्पष्ट रूप से कहा कि जो अपनी माँ को असहाय दशा में छोड़कर दूसरे की माँ की सेवा में रत रहता है, ऐसे कृतघ्न व्यक्ति का प्रायश्चित भी नहीं हो सकता। द्विवेदी जी ने यह कहते हुए इस पर भी स्पष्ट राय दी है कि विदेशी भाषा सीखने, जानने और सम्मान करने में कभी पीछे नहीं रहना चाहिए; क्योंकि "ज्ञान कहीं भी मिलता हो, ग्रहण ही कर लेना चाहिए।" उनका बस इतना ही आग्रह है अपनी भाषा एवं उसी के साहित्य को प्रधानता देनी चाहिए। सबसे लेखक का आग्रह है कि ज्ञान, विज्ञान, धर्म और राजनीति हमेशा अपनी भाषा में होनी चाहिए।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य के शलाका पुरुष आ० महावीर प्र० द्विवेदी ने इस निबंध में बड़े पुरजोर ढंग से स्वभाषा के उत्थान और जातीय साहित्य के संरक्षण की वकालत की है। राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना से प्रेरित इस निबंध में साहित्य की उस शक्ति का परिचय कराया गया है जिससे राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान की अभिवृद्धि होती है।

कविता क्या है? Ref.

आ० रामचन्द्र शुक्ल

'कविता क्या है' निबंध आ० रामचन्द्र शुक्ल के प्रसिद्ध निबंध-संग्रह - चिन्तामणि, भाग-1 — में संकलित काव्य-चिन्तन प्रधान निबंध है। आ० शुक्ल ने एक सफल इतिहासकार एवं निबंधकार की भूमिका का निर्वाह करते हुए आलोचना-साहित्य को वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। उन्होंने एक ओर आलोचना के मान स्थिर किए, तो दूसरी ओर व्यावहारिक समीक्षाएँ भी प्रस्तुत की। हिन्दी जगत की आलोचना-पद्धति को सर्वमान्य दिशा देने के कारण उनकी मेधावेता प्रमाणित है। प्रस्तुत निबंध एक विचारात्मक और मौलिक काव्य-चिन्तन से युक्त उनका पाण्डित्यपूर्ण निबंध है। कविता के संबंध में किया गया उनका विवेचन शाश्वत एवं मूल्यवान है।

प्रस्तुत निबंध में काव्य का विवेचन शुक्लजी ने सैद्धान्तिक दृष्टि से तो किया ही है, व्यावहारिक पक्ष का भी पूर्ण ध्यान रखा है। कविता को वे 'भावयोग' मानते हैं, तात्पर्य कि कविता भावों की अभिव्यक्ति है। वस्तुतः भाव ही कविता का मूल तत्व है; यही उसकी नींव है और इसी पर उसकी सारी इमारत बनती है। कविता को शुक्लजी कर्मयोग और ज्ञानयोग के धरातल पर ही मानते हुए उसे भावयोग कहते हैं। कविता को परिभाषित करते वे कहते हैं - "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति-साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती है, उसे कविता कहते हैं।" व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठते हुए सबकुछ अपने अंदर आत्मसात करना ही मुक्तावस्था है। यही मुक्तावस्था उपनिषद के अनुसार 'भूमा स्थिति' और रसशास्त्र के अनुसार 'मधुमती भूमिका' है। लेखक ने कविता को 'समाज का दर्पण' या 'जीवन की आलोचना' से अधिक उसे आध्यात्मिक शिखर पर प्रतिष्ठित किया है।

कविता के संबंध में शुक्लजी ने दूसरी बात कही है कि "यह 'जगत अनेकरूपात्मक और हृदय अनेक भावात्मक' होने के कारण कविता में भी व्यापक व विविध भाव स्वीकार्य हैं। लेखक को यह दृष्टि गो० तुलसीदास से मिली है। क्रोध, घृणा आदि सभी भाव कविता में त्याज्य

नहीं है। हर भाव का रचनात्मक पक्ष है, जिसका संधान हर श्रेष्ठ कलाकार करता है। शुक्लजी ने इसीके साथ भावों के मूल और आदि रूप को ही काव्यात्मकता के लिए आवश्यक माना। इस संबंध में वे कहते हैं कि इसमें रस-परिपाक की जैसी क्षमता है, वैसी क्षमता सभ्यता के नये आवरण में शायद ही हो। रसवादी आलोचक होने के नाते शुक्लजी युग-सापेक्ष रूप में भावाभिव्यक्ति को महत्त्व न देकर आदिम रूप को ही देते हैं। वे कवि का बड़ा काम यह मानते हैं कि वह सभ्यता के आवरण को भेदकर मर्मस्पर्शी भावों का उद्घाटन करें। उनका कथन है, "प्रच्छन्नता का उद्घाटन कवि-कर्म का एक मुख्य अंग है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों कवियों के लिए यह काम बढ़ता जायेगा।" लेखक का मानना है कि आज हमारे मूल भाव बहुत ही परिवर्तित रूप में, नये परिवेश में अभिव्यक्त हो रहे हैं, भावों का यह प्रच्छन्न रूप मर्मस्पर्शी नहीं होता।

निबंध में लेखक ने अन्य प्रश्न उठाया है कि कविता का मूल तत्त्व भाव है, तो क्या ज्ञान काव्य-क्षेत्र से बाहर की वस्तु है? समाधान में शुक्लजी कहते हैं — "ज्ञान ही भावों के संचार के लिए मार्ग खोलता है। ज्ञान-प्रसार के भीतर ही भाव-प्रसार होता है।" अतः शुक्लजी ज्ञान और बुद्धि को काव्य का बाधक नहीं, सहायक मानते हैं। लेखक के अनुसार, कविता की भावात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए कवि में विशेष कौशल और साधना की आवश्यकता होती है। यहाँ शुक्लजी कविता में प्रत्यक्ष कथन का विरोध करते हैं। वे कहते हैं — "काव्य में अर्थग्रहण से काम नहीं चलता, बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है। जबतक कोई काव्य-वस्तु मूर्त और गोचर रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता, तबतक वह अभिव्यक्ति काव्यात्मक नहीं कही जा सकती।" ~~शुक्लजी~~ इस बिम्ब-ग्रहण के लिए सूक्ष्म निरीक्षण एवं संश्लिष्ट चित्रण की अपेक्षा होती है तथा चित्रात्मक भाषा आवश्यक होती है।

'रस-मीमांसा' में शुक्लजी ने काव्य के अन्य गुणों का विवेचन करते हुए ~~ध~~ ध्वन्यात्मकता का भी संकेत किया है। काव्य में जो भाषा आती है, उसकी एक विशेषता है — चित्रात्मकता

और दूसरी – ध्वन्यात्मकता। रसवादी आचार्य होने के नाते शुक्लजी अलंकार को महत्व नहीं देते। जहाँ तक अलंकार रस-बोध में सहायक हो सके, वहीं तक अलंकार उन्हें स्वीकार्य है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य समीक्षक आ० शुक्ल ने प्रस्तुत निबंध के माध्यम से काव्य के मूल तत्वों का विश्लेषण अत्यंत युक्तिसंगत, तर्कपूर्ण और प्रभावी ढंग से किया है। निबंध में आ० शुक्ल की अध्यापकीय शैली है। पहले वे सूत्रबद्ध सिद्धान्त बतलाते हैं, फिर उसकी व्याख्या करते हैं। इस रूप में काव्य के तत्व पाठकों के समक्ष खुलते चलते हैं।

निबंध के मुख्य बिन्दु :–

① जब हम अपनी व्यक्तित्व-सीमा से मुक्त होकर भाव-भूमि का साक्षात्कार करते हैं, तब हमारा हृदय मुक्त स्थिति में पहुँच जाता है।
② हृदय की मुक्त स्थिति शब्द रूप में प्रकट होती है, वह काव्य है।
③ कविता मनुष्य मात्र को सामान्य की शाश्वत भावभूमि पर प्रतिष्ठित कर देती है।
④ सभ्यता का विकास हमारी शाश्वत मूल भावनाओं को प्रच्छन्न करता जाता है।
⑤ कविता का कार्य मूल मानवीय भावनाओं का उद्घाटन है।
⑥ मूल भावों का उद्घाटन इनके मूर्त एवं गोचर रूप में प्रकट करने से ही हो सकता है।
⑦ भावों का मूर्त-विधान ही बिम्बात्मक स्थिति है।
⑧ बिम्ब को उत्पन्न करने की योग्यता से मानवीय प्रकृति का वाह्य प्रकृति से मेल होता है।
⑨ कविताएँ तीन प्रकार की होती हैं – ① अंतःप्रकृति की कविता ② वाह्य-प्रकृति की कविता, और ③ अंतः एवं वाह्य प्रकृति के मेल की कविता। तीसरे प्रकार की कविता ही सर्वश्रेष्ठ होती है।
⑩ कविता हमारी भावनाओं को ~~कुण्ठित~~ कुण्ठित कर देती है – ऐसा आक्षेप अनुचित है; वह तो उन्हें उदात्त बनाती है।

Ref.

सखि वे मुझसे कहकर जाते

'सखि ! वे मुझसे कहकर जाते' द्विवेदी युगीन प्रसिद्ध चम्पू काव्य 'यशोधरा' से संकलित गीत है। 'यशोधरा' राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की चर्चित कृति है, जहाँ आदर्श भारतीय नारी का अनुपम बलिदान चित्रित है। गुप्तजी ने 'साकेत' महाकाव्य में युगों से उपेक्षित नारी-चरित्र-उर्मिला - के पति-वियोग की पीड़ा को चित्रित किया था। इसी रचना के अनन्तर कवि का ध्यान उस भारतीय नारी की ओर गया जिसकी पीड़ा उर्मिला से अधिक उदात्त और महनीय थी और वह यशोधरा है। 'यशोधरा' काव्य में गुप्तजी ने गौतम बुद्ध की पत्नी — यशोधरा के पति-वियोग की पीड़ा को चित्रित किया है।

हिन्दी साहित्य में पहली बार गुप्तजी के काव्य में भारतीय नारी के उस रूप के दर्शन होते है, जहाँ वह सखी, पत्नी, माँ, अभिमानिनी, मानिनी और विरह-दग्धा है। गौतम बुद्ध ने अपनी पत्नी यशोधरा को रात में सोता छोड़कर महाप्रस्थान किया था। यशोधरा की गोद में पुत्र राहुल को डालकर गौतम ने जग-कल्याण के लिए महाभिनिष्क्रमण किया। पत्नी से बिना कुछ बताए सिद्धार्थ के चले जाने की पीड़ा यशोधरा के लिए असह्य हो जाती है, किन्तु पीड़ा की अधिकता में वह रुदन भी नहीं कर पाती क्योंकि उसे राहुल का पालन करना है।

प्रस्तुत गीत में पति-वियोग से दुखी यशोधरा का अभिमानिनी और मानिनी रूप उभरा है। सिद्धार्थ का चुपचाप चला जाना यशोधरा की टीस बनकर इस गीत में गूंजते हैं। उसके हृदय की टीस है — सखि ! वे मुझसे कहकर जाते। सिद्धि प्राप्ति के लिए, जन-कल्याण के लिए सिद्धार्थ का महाभिनिष्क्रमण यशोधरा को गौरवान्वित करता है। किन्तु उसे अन्य क्षत्राणियों की भाँति स्वयं के हाथों सज्जित कर इस उद्देश्य के लिए भेजने का अधिकार न मिला। उन्हें यशोधरा द्वारा प्रश्न करने का भय रहा होगा, किन्तु शायद वे यशोधरा को इतना जान ही नहीं पाए। एक वीर क्षत्राणी कभी अपने पति की लक्ष्य-प्राप्ति में

"स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में —
क्षात्र धर्म के नाते।"

Page No:
Date: / /

बाधक नहीं बनती। यशोधरा कहती है कि आज मेरी आँखें उन्हें निष्ठुर मानती हैं, क्योंकि उन आँखों ने मेरी ओर से दृष्टि फेर ली किन्तु क्या वे जाते समय मेरी आँखों के आँसू देख पाते? उनकी आँखों में तो ~~सम~~ संपूर्ण विश्व के लिए करुणा है। एक पत्नी का यही दुख है कि उन्होंने मुझ पर यह अविश्वास क्यों किया कि मैं उन्हें रोक लेती।

यशोधरा को अपने सिद्धार्थ पर अभिमान है कि वे जिस सिद्धि-प्राप्ति के लिए गए हैं, उसमें वे अवश्य सफल होंगे। उसकी कामना है कि मेरे दुख से वे कभी दुखी होकर अपने लक्ष्य से भटक न जायें। वे तो इस महान यात्रा पर जाकर मेरे लिए अधिक पूज्य हो गये हैं। मैं किस मुख से उन्हें बिन बताये जाने का उलाहना दूँ। किन्तु एक पत्नी का मान फिर भी यशोधरा को यह सोचने के लिए विवश करता है कि जब वे सिद्धि प्राप्तकर लौटेंगे, तो क्या मेरे रोते प्राण उनका गाकर-प्रसन्न होकर उनका स्वागत कर पायेंगे?

निश्चित ही, गुप्तजी का यह प्रसिद्ध गीत एक भारतीय पत्नी के दुखभरे हृदय की, उसके मान-अभिमान की भावपूर्ण अभिव्यक्ति है। 'साकेत' की उर्मिला के दुख की अपेक्षा यशोधरा की पीड़ा को कवि ने अधिक प्रभावी सिद्ध किया है। इसे न तो विरह की अवधि का और न ही पति के प्रवास की दिशा का पता था, जबकि उर्मिला को यह ज्ञात था। इतना ही नहीं, दुख की अधिकता में उर्मिला आँसू बहा सकती है, आत्महत्या भी कर सकती है; किन्तु राहुल के कारण वह इससे भी वंचित है। जहाँ तक गीत के शिल्प का प्रश्न है, खड़ी बोली की गेयता के सामर्थ्य का गुप्तजी ने पहली बार हिन्दी साहित्य में परिचय कराया है। गीत की भाषा में सरलता और सरसता से इसकी सप्राणता स्पष्ट है। हम कह सकते हैं, कि भारतीय संस्कृति के अनन्य गायक मैथिलीशरण गुप्त की यह रचना भारतीय नारी की असामान्य पीड़ा को उदात्त रूप प्रदान करती है।

→ "जायँ सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से?"

Ref.

'युद्ध-स्थिति' कविता की समीक्षा/भावार्थ

'युद्ध-स्थिति' नयी कविता-धारा के प्रमुख हस्ताक्षर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की प्रमुख कविता है। सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं के द्वारा निम्न मध्यवर्गीय शहरी व ग्राम्य जीवन के यथार्थ को अपनी संवेदना-युक्त वाणी दी है। वे न केवल व्यक्ति के दर्द और सामाजिक विसंगतियों का चित्रण करते हैं, व्यापक जन-संघर्ष और नव-निर्माण का भी आह्वान उनकी कविताओं में है। 'युद्ध-स्थिति' कविता उनके काव्य-संग्रह ~~में संकलित~~ — 'एक सूनी नाव' में संकलित है, जहाँ व्यक्ति पर, शासन पर, सत्ताधीशों पर, शोषकों पर व्यंग्यात्मक रूप से तीखा आक्रोश व्यक्त किया गया है।

प्रस्तुत कविता में सर्वेश्वर ने युद्धोपरान्त स्थि दृश्यों, प्रेम एवं मानवता के स्वरों को अभिव्यक्ति दी है। कवि युद्ध को स्वीकार नहीं करता, वरन् इससे घृणा करता है। युद्ध के बाद समाज और व्यक्ति की पीड़ा का, मानवता के विनाश का करुण-विगलित दृश्य इस कविता में चित्रित है। —

"मैं घृणा करता हूँ उस युद्ध से
जो बेड़ियाँ खोलने की जगह/ बेड़ियाँ पहनाता है,
दीवारें ढहाने की जगह/ दीवारें उठाता है।"

वर्तमान युग में प्रत्येक व्यक्ति को इस युद्ध से जो पीड़ा होत कवि की संवेदना उसके साथ है। धर्मग्रन्थों के पन्नों पर शैतान दिमाग के नक्शे या बमबार जहाजों द्वारा आयतों के पढ़ने, ईश्व पतंग की तरह उड़ाने के कारण मानवता की जो हत्या की है, कवि इस नासमझी के विरुद्ध स्वयं को पाता है। कवि सोच का पक्षधर नहीं हो सकता जो चीथड़े पहने, ~~नंगी~~ नंगे वाली युवती को ~~जूते~~ जूते और वस्त्र देने के बजाय बंदूकें हाथ में थमा देता है। कवि उन सैनिकों को भी रोकत जो — "नवजात शिशु को छिपाये घबरायी भागती औरत के पीछे बन्दूकें उठाये दौड़ रहे हैं।

सर्वेश्वर का कवि-हृदय ऐसे सभी ब युद्धों को नकारना चाहता है, जहाँ दूसरे के ईश्वर को म स्वयं के ईश्वर को प्रतिष्ठित करता है। वह स्वयं के

के मनुष्य को जिन्दा रखने के लिए नंगे पैरों को जूता देना चाहता है, धूल और भूसे से अन्न का दाना चुनती नववधू के लिए ईश्वर को धिक्कारना चाहता है, ईश्वर के प्रार्थना मंत्रों के बदले स्वयं के मनुष्य का अर्थ खोजना चाहता है। कवि का मनुष्य इस समाज के बाहरी युद्धों को, उन अस्त्रों को तुच्छ और निरर्थक मानता है और अपने भीतर वह हमेशा स्वयं को युद्ध रत पाता है। अपने भीतर के इस युद्ध में अकेला किन्तु अधिक समर्थ और सार्थक भी पाता है। —

"कभी मनास्थितियों के अनुरूप
परिस्थितियों को ढालता हूँ,
कभी परिस्थितियों के अनुरूप
मनास्थितियों को।

इस युद्ध में शामिल कवि को लगता है कि वह स्वयं एक युद्ध बन गया है। इसलिए उसका व्यवस्था से आग्रह है कि 'मेरा किसी युद्ध के लिये/निर्माण मत करो।" कवि यह भीतरी युद्ध स्वयं के जिन्दा रहने के लिए लड़ता है। मनुष्य के जीवित होने का प्रमाण है कि वह जीवन में कामनाओं के फूल भर पाये, उनमें सुगन्धि भर पाये तथा हर प्यासी आत्मा को तृप्त कर सके। वह यह युद्ध लड़ता है क्योंकि उसकी चाह है — "बुझी निगाहों को/रोशन करने के लिए/
गीली लकड़ियाँ सुलगाता हूँ।"

निश्चय ही, 'युद्ध-स्थिति' कविता में केवल अनास्था और मृत्युबोध नहीं, जिजीविषा और आस्था के स्वर भी हैं। कवि इस संसार में दैवी संगीत सुनने की चाह से आम आदमी को विसंगतियों से दूर करना चाहते हैं, ताकि मनुष्य के सपने जिन्दा रहें तथा वे फलीभूत हों, और उसकी आस्था समंदर बन जाये।

Ref:

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का काव्य-वैशिष्ट्य

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का इतिहास जिस काव्य-प्रवृत्ति को सर्वाधिक महत्त्व देता है, उनमें आम आदमी के संघर्ष, एकाकीपन, पीड़ा और मोहभंग का नाम लिया जा सकता है और जिसे 'नई कविता' काव्य-धारा कहा गया। इस नई काव्य-धारा का प्रारंभ यों तो प्रयोगवादी-धारा से ही दृष्टिगत हो जाता है; किन्तु अज्ञेय प्रयोगवादी कवि अज्ञेय के संपादकत्व में प्रकाशित 'तीसरा सप्तक' (1959) से नई कविता पूर्णतः अस्तित्व में आयी और इस संग्रह के सातवें कवि थे - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

'तीसरा सप्तक' में संकलित कविताओं के अलावा 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव', 'कुआनो नदी' जैसी कविता-पुस्तकों के रचनाकार सर्वेश्वर बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। निम्न मध्य वर्ग के जीवन का व्यापक संदर्भ में जैसा यथार्थ चित्रण सर्वेश्वर ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। जिन्दगी के अकेलेपन, अजनबीपन, संत्रास, राजनीतिक पाखंड, भ्रष्ट व्यवस्था, जीवन की विसंगतियों तथा इनके प्रति बुद्धिजीवियों की निष्क्रियता का कवि ने ईमानदार चित्रण किया है। — "मैं कहना चाहता हूँ/यह कायरों का देश है/
यहाँ लोग देखने को आगे देखते हैं/
चलने को पीछे चलते हैं।"

सर्वेश्वर के संबंध में अज्ञेयजी की टिप्पणी है, "समकालीन सत्य और यथार्थ को जो नये कवि सफल और सबल हाथों से पकड़ सके हैं - जो सच्चे अर्थों में समकालीन जीवन से संपृक्त हैं - उनमें सर्वेश्वरजी का विशेष स्थान है।" वस्तुतः वे जन-चेतना के समर्थ कवि हैं। उनकी लम्बी कविता 'कुआनो नदी' ग्राम्य संस्कृति और नगर संस्कृति की टकराहट को चित्रित करती है। — "धूप में शहर की गंदगी यहाँ साफ होती है।
धोबी कपड़े धोते हैं
आवारा औरतें सिगरेट पीती/गुनगुनाती -
लिपटती अपने ग्राहकों के साथ घूमती हैं।"

सर्वेश्वर की कविताओं में मानव जीवन की सच्ची अनुभूतियों के दर्शन होते हैं। कवि का संवेदनशील हृदय जानता है कि जब गोलियाँ चलती हैं तो सबसे पहले वह मारा जाता है जो कतार में सबसे पीछे का आदमी होता है। कवि को यह भी पता

है कि कविता कोई नारा नहीं जिसे शहर की सड़कों पर लिखकर घोषणा की जाये कि क्रांति हो गयी। कवि यह भी जानता है कि "आदमी शुतुरमुर्ग है
जो एक झटके से तेज धार में बदल जाता है।"
कवि सर्वेश्वर की रचना युद्ध और घृणा के विरोध्य की कविता है, स्वाभिमान की कविता है। वे व्यक्ति पर, शासन पर, सत्ताधीशों पर, सामाजिक ढांचे पर, शोषकों पर व्यंग्यात्मक रूप से तीखा आक्रोश व्यक्त करते हैं —
"जिसके पैर में तुम जूते नहीं दे सकते
उसके हाथ में तुम्हें बन्दूक देने का क्या अधिकार है।"
वे कविता को विशुद्ध मानव की वस्तु मानते हैं। इसलिए उनकी दृष्टि मानव के सुख-शांति की ओर जाती है। वे आज की चकाचौंध भरी जिन्दगी के खोखलेपन को ~~उजागर~~ उजागर करते हैं। पर्यावरण-चेतना हेतु, वे जन जागृति की आवश्यकता भी समझते हैं। शायद इसीलिए उनकी कविताएँ क्रांति का पक्षधर हैं, सर्वत्र नवीन विचारधारा का वहाँ आग्रह है —
"लीक पर वे चलें जिनके/चरण दुर्बल और हारे हैं।"

नैतिक वर्जनाओं, सामाजिक रूढ़ियों और राजनीतिक-आर्थिक वैषम्य को प्रबलता से चित्रित करने वाले सर्वेश्वर ने अभिव्यक्ति के लिए सपाटबयानी को ही महत्व दिया है; किन्तु अपने नूतन बिम्ब और प्रतीक-विधान के चलते वही उनके लिए क्रांति का सबल शस्त्र है। तभी तो इस सपाटबयानी में भी गंभीर अर्थवत्ता उद्घाटित हो जाती है —
"लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाये भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाये।"
निश्चय ही, सर्वेश्वर अपने दौर के महत्वपूर्ण कवि हैं। जीवन में हर कहीं से रंग लेने की और हर कहीं से कविता पा लेने की जो क्षमता इस कवि में है, वही उसकी जीवन-शक्ति है। उनमें यदि अनास्था और पराजय की अनुभूति है तो उससे कहीं अधिक आस्था और विजय के विश्वास का बोध है।